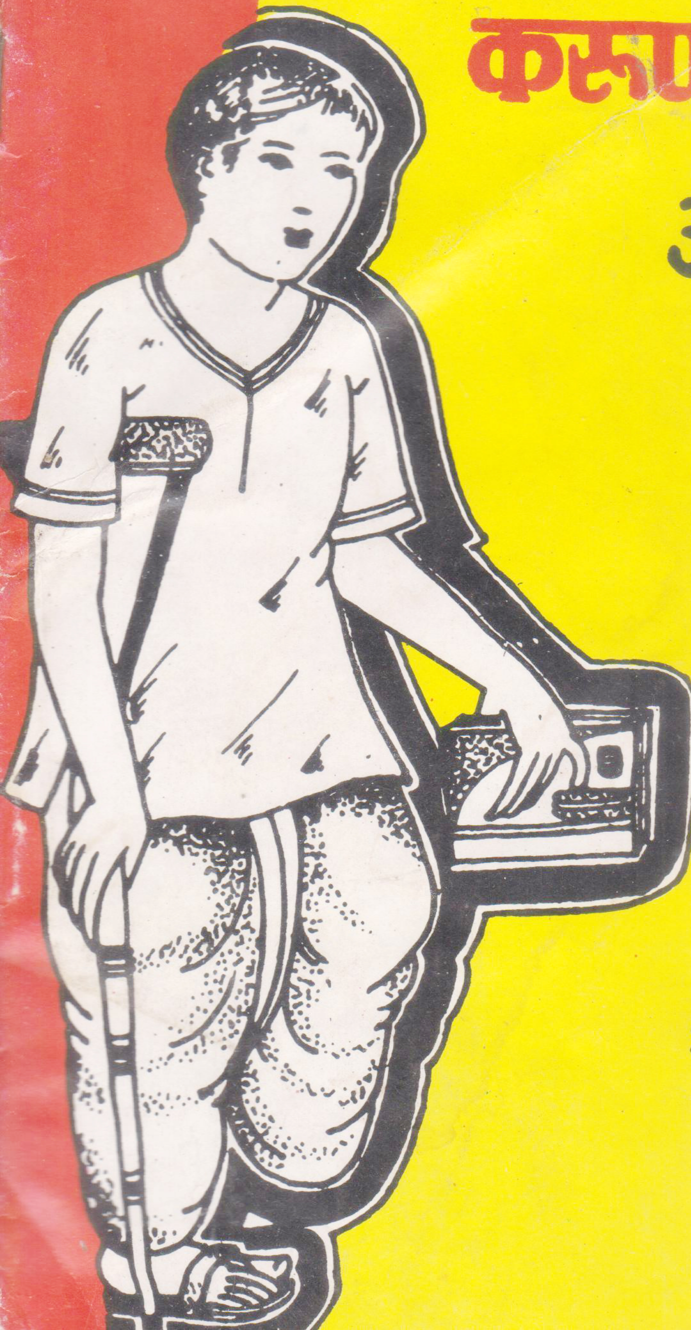
करुण कथाएं
अपंगों की



श्री व्यथित हृदय

करुण कथाएं अपंगों की

श्री व्यथित हृदय

विक्रम प्रकाशन
ई-11/5, कृष्णनगर, दिल्ली-110051

क्रम

प्रकाशक : विक्रम प्रकाशन
ई-11/5, कृष्णनगर, दिल्ली-110051

प्रथम संस्करण : 1999

मूल्य : 20.00 रुपये

लेज़र कंपोजिंग : ओम लेज़र प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

मुद्रक : तरूण ऑफसेट

सूरदास

रात का पहला पहर था। ढोलक पर रामायण का गान हो रहा था। रामायण की चौपाइयां मधुर-मधुर कंठों से निकलकर चारों ओर गूंज रही थीं। ढोलक की आवाज भी गूंजकर मन को हर रही थी। सुनने वाले आनन्द की लहरों में डूबे जा रहे थे।

सहसा ढोलक की आवाज बन्द हो गई।

चारपाई पर लेटे हुए सूरदास ने पूछा—क्यों भाई, ढोलक की आवाज क्यों बंद हो गई ? सूरदास की उम्र ४०-४५ वर्ष की थी। दोनों आंखों से अंधे थे। किसी दूसरे गांव के रहने वाले थे। जिस आदमी के दरवाजे पर रामायण का गान हो रहा था, उसके दूर के रिश्तेदार थे। कभी-कभी आ जाया करते थे।

सूरदास की बात सुनकर ढोलक बजाने वाले ने जवाब दिया—मेरे पेट में जोरों से दर्द हो रहा है। मैं जा रहा हूं। अब ढोलक न बजा सकूंगा।

बात खतम करने के साथ ही ढोलक बजाने वाला उठकर चला गया।

डोलक तो बंद हो ही गई, रामायण का गान भी बंद हो गया। सुनने वाले उदास हो गए। सोचने लगे, कितना अच्छा रामायण का गान हो रहा था, पर ईश्वर की ऐसी लीली हुई कि बंद हो गया।

सूरदास मन-ही-मन सोच रहे थे। उन्होंने सोचते-सोचते कहा—रामायण का गान बंद मत करो। मैं ढोलक बजाऊंगा।

सूरदास उठकर बैठ गए और एक आदमी के सहारे ढोलक के पास जा पहुंचे। ढोलक के पास बैठ गए। लोग आश्चर्य-चकित होकर सूरदास की ओर

देखने लगे।

सूरदास ने ढोलक संभालकर दोनों ओर हाथों की थपकी दी। ऐसी आवाज निकली कि लोग मोहित हो गए, रामायण की चौपाइयां गाने लगे।



रामायण की चौपाइयों का गान होने लगा, सूरदास की ढोलक बजने लगी। ऐसा रंग जमा, ऐसा रंग जमा कि, लोग बेसुध हो गए। आधी रात बीत गई, पर कुछ पता ही नहीं चला।

सवेरे के नौ बज रहे थे। सूरदास जाने के लिए तैयार हो रहे थे। एक

आदमी ने पहुंचकर पूछा—सूरदास जी, क्या जा रहे हैं ?

आदमी का नाम गिरजाशंकर था। वह उसी गांव का रहने वाला था। शहर में व्यापार करता था। बड़ा धन कमाया था। उसने लड़कियों का एक स्कूल भी खोला था। सूरदास जब रात में ढोलक बजा रहे थे, तो वह भी वहीं बैठा हुआ था। वह मन-ही-मन सूरदास के गुण पर मोहित हो गया।

सूरदास ने जवाब दिया—हां भाई, अब जाऊंगा। आप कौन हैं ? आदमी ने जबाव दिया—मेरा नाम गिरजाशंकर है। मैं इसी गांव का रहने वाला हूं, पर शहर में रहता हूं। आप बहुत अच्छी ढोलक बजाते हैं।

सूरदास ने कहा—बहुत अच्छा क्या बजाता हूं, हां बजा लेता हूं।

गिरजाशंकर मन-ही-मन सोच रहा था। उसने सोचते-सोचते कहा—सूरदास जी, एक बात पूछूं, बताइयेगा ?

सूरदास ने जवाब दिया—पूछो, जरूर बताऊंगा।

गिरजाशंकर ने कहा—मैं जानना चाहता हूं, आप दोनों आंख के अंधे कैसे हुए और आपने ढोलक बजाना कैसे सीखा ?

सूरदास कुछ गंभीर हो गए। कुछ देर तक सोचते रहे, फिर सोचते-ही-सोचते बोले—अंधा तो मैं मां के पेटसे ही हूं। ढोलक बजाना कैसे सीखा—यह तो मैं भी नहीं जानता। जब बड़ा हुआ, तो ढोलक बजाने लगा।

बजाते ही बजाते ढोलक का बजाना आ गया। मैं तो इसे केवल भगवान की दया मानता हूं।

गिरजाशंकर ने दूसरा सवाल किया—क्या आप ढोलक के अतिरिक्त और भी कुछ बजा लेते हैं ?

सूरदास ने जवाब दिया—हां, तबला और सितार भी बजा लेता हूं।

गिरजाशंकर ने सोचते-सोचते फिर कहा—सूरदास जी, मेरी एक [illegible] है। मैंने शहर में लड़कियों का स्कूल खोला है। मैं चाहता हूं, आप मेरे

स्कूल में लड़कियों को बाजा बजाना सिखायें।

पहले तो सूरदास जी ने अस्वीकार दिया, पर जब गिरजाशंकर ने बहुत आग्रह किया, तो वह मान गए।

सूरदास जी शहर में जाकर गिरजाशंकर के स्कूल में लड़कियों को बाजा सिखाने लगे।

धीरे-धीरे सूरदास का नाम चारों ओर फैल गया। वे रेडियो और टेलीविजन पर भी बुलाए जाने लगे।

सूरदास का नाम सारे देश में फैल गया। उन्होंने तबला और सितार की कई प्रतियोगिताओं में भाग लेकर नाम पैदा किया।

सूरदास अपनी कला को दिखाने के लिए इंग्लैंड और अमेरिका भी गए। इंग्लैंड और अमेरिका के लोग उनकी कला को देखकर मोहित हो गए। उनका फोटो बड़े-बड़े अखबारों में छपा। उनके फोटो के नीचे लिखा गया—दुनिया का दोनों आंखों का अंधा सबसे बड़ा तबला-वादक।

सूरदास जी इस समय दुनिया में नहीं हैं, पर वे सदा के लिए इस बात को असत्य सिद्ध कर गए हैं—विकलांग कुछ नहीं कर सकते, किसी काम के नहीं।

एक पैर का मोती

मोती बैसाखी के सहारे चलता था। उसका एक पैर रेलगाड़ी से कट गया था। वह मुहल्ले-टोले में ही नहीं, बैसाखी के सहारे मील-दो-मील चला जाता था। उम्र २०-२१ साल की थी। बड़ा हंसमुख था।

मोती पढ़ा-लिखा था। उसने मिडिल की परीक्षा पास की थी। हिन्दी के अलावा अंग्रेजी भी जानता था। अंग्रेजी का अखबार पढ़कर खबर का मतलब समझ लेता था। हिन्दी तो खूब जानता था।

मोती मुहल्ले के टेलीफोन केन्द्र पर बैठता था। कोई भी आदमी ५० पैसे देकर टेलीफोन कर सकता था। तीस पैसे तो सरकार के पास चले जाते थे, और बीस पैसे मोती के पास रह जाते थे।

दिन-भर में तीस-चालीस आदमी रोज टेलीफोन करने के लिए आ ही जाते थे। रोज बीस पैसे के हिसाब से ६-७ रुपये मोती को मिल जाते थे। यही उसकी जीविका थी। अकेला आदमी था। खा-पी लेता था और महीने में कुछ बचा भी लेता था।

सरकार ने विकलांगों के लिए दिल्ली में टेलीफोन केन्द्र योजना के नाम से एक योजना चलाई है। जगह-जगह टेलीफोन केन्द्र बनाये गए हैं। हर एक टेलीफोन केन्द्र पर एक विकलांग बैठता है। जो आदमी टेलीफोन करने आता है, पचास पैसे देता है। तीस पैसे सरकार के पास चले जाते हैं और बीस विकलांग को मिल जाते हैं।

मोती का टेलीफोन केन्द्र भी इसी योजना के अन्तर्गत बनाया गया था।

सवेरे के आठ-नौ बज रहे थे। मोती अपने केन्द्र पर बैठा था। एक दस-ग्यारह वर्ष की लड़की पहुंची, मोती के सामने ५० पैसे रखकर टेलीफोन करने लगी—

डाक्टर साहब, मेरी मां की तबीयत अभी ठीक नहीं हुई। दया करके दवा नौकर से भेज दीजिये। आज मेरे पास पैसे नहीं हैं। कल सवेरे आऊंगी तो दे दूंगी। लड़की की बात के उत्तर में डाक्टर ने जो कुछ कहा, उसे मोती ने नहीं सुना।

लड़की ने फिर डाक्टर से कहा—डाक्टर साहब, कल पैसे जरूर दे दूंगी। आज कुछ न कुछ इन्तजाम हो जाएगा। दया करके दवा भेज दीजिए।

डाक्टर ने फिर दूसरी बार जो जवाब दिया उसे मोती ने नहीं सुना।

लड़की ने फिर तीसरी बार कहा—अच्छी बात है, डाक्टर साहब, आज मेरी मां बिना दवा के ही रहेगी।

लड़की बहुत उदास हो गई थी। वह टेलीफोन का रिसीवर रखकर जाने लगी।

मोती बोल उठा—सुनो, तुम्हारा क्या नाम है और तुम कहां रहती हो ?

लड़की ने उत्तर दिया—मेरा नाम मधु है। मैं पास ही ४१३ बी में मोटर के गैरेज में रहती हूं।

मोती ने दूसरा प्रश्न किया—तुम्हारी मां को क्या हुआ है ? क्या घर में कोई आदमी नहीं है ? लड़की ने जवाब दिया—मेरी मां को तीन-चार दिनों से ज्वर है। घर में मुझे और मां को छोड़कर और कोई नहीं है।

मोती सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा—तुम मेरी बहन की तरह हो। बुरा न मानो, तो एक बात कहूं ?

मधु ने मोती की ओर देखते हुए कहा—कहो।

मोती सोचता-सोचता बोला—मेरे पास पन्द्रह-बीस रुपये हैं। ले लो, अपनी मां को दवा लाओ।

मधु ने उत्तर दिया—नहीं, मैं रुपये नहीं लूंगी। मेरी मां नाराज होगी।

मधु चली गई। मोती सोचने लगा। उसे मधु का नाम और घर का पता तो मालूम हो गया था, पर उसे यह नहीं मालूम हो सका था कि, उसने किस डाक्टर को फोन किया था।

मोती सोचने लगा। साहसा उसे याद आया, मधु ने अमुक नम्बर को फोन किया था। जब नम्बर मालूम हो गया, तो मोती ने कुछ प्रयत्न करके डाक्टर का पता लगा लिया।

मोती कुछ देर तक सोचता रहा। फिर वह उठा और अपने केन्द्र को बन्द करके डाक्टर के पास जा पहुंचा। उसने डाक्टर से कहा—उसे मधु ने पैंसे देकर अपनी मां के लिए दवा लाने के लिए भेजा है।

डाक्टर ने दवा देकर पैंसे ले लिए।

मोती बैसाखी के सहारे मधु के घर जा पहुंचा। उसकी मां चारपाई पर लेटी थी। मधु सिर की ओर बैठकर उसका सिर दाब रही थी।

मधु मोती को देखकर आश्चर्य से बोल उठी— तुम !

मोती ने कहा—हां बहन, मैं। मैं मां के लिए दवा लाया हूं।

मधु की मां ने मोती की ओर देखा। वह बैसाखी के सहारे खड़ा था। मधु की मां की ओर देखता हुआ बोला—हां मां, मैं तुम्हारे लिए दवा लाया हूं।

मोती ने दवा की टिकिया मधु की मां की चारपाई के पास रख दीं। वह फिर बोला—इसे तीन-तीन घंटे पर दो-दो गोली खा लेना।

मोती अपनी बात खतम करके चलने लगा। मधु की मां बोल उठी—

ठहरो, तुम कौन हो ?

मोती ने रुककर जवाब दिया—मैं कौन हूं, यह तो तुम देख ही रही हो। नाम मेरा मोती है। टेलीफोन केन्द्र पर काम करता हूं। दुनिया में मेरा कोई नहीं है।

मधु की मां बोली—ऐसा क्यों कहते हो ? जब तुमने मुझे मां कहा है, तब तुम मेरे बेटे हो। मैं हूं तुम्हारी मां। तुम आया करो।

उस दिन से मोती मधु के घर जाने लगा। वह मधु को अपनी बहन और उसकी मां को अपनी मां समझने लगा।

कुछ दिनों बाद, मोती मधु के गैरेज में रहने लगा। मोती ने पैसे कमा-कमाकर इकट्ठे किए। उसने मधु का विवाह किया। मधु जब ससुराल चली गई, तो वह मधु की मां की सेवा में अपनी हड्डी गलाने लगा। वह जब तक रहा मधु को अपनी बहन और उसकी मां को अपनी मां मानकर दोनों की सेवा में अपने को गलाता रहा।

मोती की सेवा और उसके त्याग की कहानी को जो भी सुनता वह यह कहे बिना न रहता—मोती एक पैर का तो था, पर उसके पास जो दिल था वह हजारों-लाखों पैरों वालों से भी बड़ा था।

चिट्ठी के अक्षर

सवेरे के दस बज रहे थे। मुझे डाक से एक चिट्ठी मिली। मैं लिफाफा खोलकर चिट्ठी पढ़ने लगा—कृपा करके मेरे अखबार के लिए एक कविता भेज दीजिए।

चिट्ठी के नीचे सम्पादक का हस्ताक्षर था। सम्पादक का नाम महिपाल सिंह था।

चिट्ठियां तो बराबर आती ही रहती हैं, पर इस चिट्ठी ने मेरे मन को अपनी ओर खींच लिया। इसका कारण यह था कि, चिट्ठी की लिखावट बड़ी सुन्दर थी। हर एक अक्षर सांचे में ढला हुआ सा मालूम पड़ता था।

महिपाल सिंह से मेरी कोई जान-पहचान नहीं थी। यह उनकी पहली चिट्ठी थी। लिखावट को देखकर मेरे मुंह से अपने ही आप निकल पड़ा—वाह-वाह, बड़ी सुन्दर लिखावट है!

मैंने दूसरे ही दिन कविता भेज दी।

कविता अखबार में छपी। जिस अंक में छपी, वह अंक भी मेरे पास आया।

पूरे बत्तीस पेज का साप्ताहिक अखबार था। शुरू से लेकर अंत तक गांव की ही बातें छपी थीं। बड़े सुन्दर ढंग से सात दिनों के समाचार छांट-छांटकर छापे गए थे। किसानों के लिए जानकारी की बहुत-सी बातें भी थीं।

मैं अखबार को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और दूसरे अंक के लिए फिर एक कविता भेज दी।

दूसरी कविता भी अखबार में छपी। अब मैं बराबर कविता भेजने

और अखबार भी मेरे पास आने लगा।

महिपाल सिंह की चिट्ठियां भी समय-समय पर आया करती थीं। वे कविता मांगते थे, कभी लेख मांगते थे, और कभी कहानी मांगते थे।



मैं बराबर उनकी इच्छाओं की पूर्ति कर दिया करता था। इसक ाम यह हुआ कि, हम दोनों के मन में एक-दूसरे के लिए प्रेम पैदा ह ।

लगभग साल-डेढ़ साल बीत गये। महिपाल सिंह ने अपने एक पत्र

लिखा—यदि आपका कभी इधर आना हो, तो मेरे ही घर ठहरने की कृपा करेंगे।

मैंने भी उत्तर में उन्हें लिख दिया—यदि उधर आना हुआ, तो जरूर आपका दर्शन करूंगा।

संयोग की बात, दो-ढाई साल बाद मुझे उधर एक शादी में जाना पड़ा। मैं यह सोचकर बड़ा प्रसन्न हुआ कि, चलो, बड़ा अच्छा हुआ। बारात भी कर लूंगा और महिपाल सिंह से मिल भी लूंगा। मैंने अपने आने की सूचना महिपाल सिंह को दे भी दी।

नियत तिथि पर मैं उस ओर बारात में सम्मिलित होने के लिए गया। जब बारात से छुट्टी पा गया तो महिपाल सिंह के घर गया।

महिपाल सिंह अपने घर के बाहरी कमरे में कुर्सी पर बैठकर मेज के सहारे कुछ लिख रहे थे।

मैंने दरवाजे पर खड़े होकर प्रश्न किया—क्या महिपाल सिंह हैं ?

महिपाल सिंह ने कुर्सी पर बैठे ही बैठे मेरी ओर देखते हुए पूछा—आप कौन हैं ?

मैंने उत्तर दिया—मेरा नाम अखिलेश शर्मा है। महिपाल सिंह उछल पड़े। उन्होंने तेजी के साथ आगे बढ़कर मुझे पकड़कर अपने हृदय से लगा लिया और कहा—अरे शर्मा जी, आप ! क्षमा कीजिएगा।

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि, मेरी दृष्टि उनके हाथों पर पड़ी। उनके एक ही हाथ था—बायां। दाहिना हाथ कंधे तक कटा हुआ था।

मैं आश्चर्यचकित होकर उनकी ओर देखने लगा। वे बड़े खुश थे, बड़े स्वस्थ थे। मैं एक क्षण में ही सोच गया—क्या इसी आदमी की वह लिखावट थी ? क्या यह बायें हाथ से इतने सुन्दर अक्षर लिखता है ?

महिपाल सिंह मुझे अपनी ओर देखता हुआ देख बोल उठे—क्या देख रहे

हैं ? क्या यह कि, आपको चिट्ठियां भेजने वाला महिपाल एक हाथ का आदमी है ? अरे भाई, यह जीवन है। जीवन में क्या हो सकता है, कोई कुछ नहीं जानता।

मैंने उत्तर दिया—आप तो मेरे मन की भांप गये। मैं सचमुच यही सोच रहा था। आपकी लिखावट बड़ी सुन्दर होती है। मैं सोच रहा था, क्या आदमी बायें हाथ से भी इतने सुन्दर अक्षर लिख सकता है ?

महिपाल सिंह ने जवाब दिया—शर्मा जी, आप तो लेखक हैं। दायें-बायें में कुछ फर्क नहीं होता। जो गुण दायें में होता है, वही बायें में भी होता है। आदमी दायें से काम लेता है, इसलिए उसके गुणों का विकास होता है, पर बेचारा बायां वैसे का वैसा पड़ा रहता है। चलिए, चाय-नाश्ता कीजिए, फिर सब बताऊंगा।

मेरे मन में महिपाल सिंह के प्रति श्रद्धा पैदा हो उठी। मैं उनके साथ-साथ कमरे में जाकर बैठ गया।

हाथ-मुंह धोने के बाद, जब मैं महिपाल सिंह के साथ चाय पीने लगा, तो मैंने उनसे पूछा—ठाकुर साहब, आप बायें हाथ से कब से लिख रहे हैं ?

महिपाल सिंह विचारों में डूब गए। कुछ देर तक सोचते रहे, फिर बोले—इस वर्ष मेरी उम्र ५५ वर्ष की है। मैं चालीस वर्ष की उम्र तक फौज में था। निशाना मारने में बड़ा तेज था। बायें और दायें दोनों हाथ से सटीक निशाना मारता था।

संयोग की बात, मुझे एक मोर्चे पर जाना पड़ा। एक दिन जब शत्रु को अपनी गोलियों का निशाना बना रहा था, तो पास ही एक बम फटा, और मेरा दाहिना हाथ कंधे तक उड़ गया।

मैं गिर पड़ा, अस्पताल में ले जाया गया। महीनों अस्पताल में पड़ा रहा। जब अच्छा हुआ, तो सरकार ने मुझे पेंशन देकर सेवा से मुक्त कर

दिया।

सरकार ने मुझसे पूछा—सेवा से मुक्त होने पर मैं कौन-सा काम करूंगा ?

मैंने उत्तर दिया—मैं पहले कुछ पढ़ूंगा-लिखूंगा और फिर उसके बाद एक अखबार निकालूंगा।

सरकार ने मेरे पढ़ने-लिखने और अखबार निकालने का पूरा इन्तजाम कर दिया।

मैं घर आकर बायें हाथ से लिखने का अभ्यास करने लगा। चार-पांच साल तक मैं अभ्यास में ही लगा रहा। मैंने बहुत-सी कवितायें लिखीं, कहानियां लिखीं और लेख लिखे। वे सभी चीजें मेरे पास मौजूद हैं। मेरी लिखावट उसी अभ्यास का परिणाम है जब लिखने में दक्ष हो गया, तो अखबार निकालने लगा। अब आप देख ही रहे हैं कि पूरे बत्तीस पेज का अखबार हर सप्ताह निकालता हूं।

महिपाल सिंह अपनी बात खतम करते हुए उठ पड़े। उन्होंने चार-पांच साल तक अभ्यास के रूप में लिखी हुई अपनी रचनायें आलमारी से निकालकर रख दीं। मैं उनकी रचनाओं को देखने लगा—टेढ़े-मेढ़े अक्षर, दूर-दूर अक्षर, अलग-अलग अक्षर, फिर सुधरे हुए, और फिर गोल-गोल सुन्दर अक्षर तथा सांचे में ढले हुए अक्षर।

मैं मुग्ध होकर बोल उठा—ठाकुर साहब, आप धन्य हैं। मैंने बचपन में पढ़ा था—रसरी आवत जात पै, सिल पर होत निशान। आज अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देख रहा हूं, बिलकुल प्रत्यक्ष देख रहा हूं।

प्रोफेसर धवन

उनका नाम प्रोफेसर धवन था। वे साहित्य पढ़ाते थे। बड़े हंसमुख थे। बड़े सहृदय थे। बोलते तो ऐसा लगता, मानो उनके भीतर मधु का सागर हो। बात-बात में, अक्षर-अक्षर में मधुरता उंडेलते थे। पढ़ाने लगते, तो ऐसा लगता मानो उनके भीतर कोई देवता बैठा हो।

प्रोफेसर धवन बैसाखी के सहारे क्लास में आते थे। वे एक पैर के थे। उनका दूसरा पैर घुटने तक कटा हुआ था। वे क्लास में आकर बैसाखी कोने में रख देते थे। और कुर्सी पर बैठकर पढ़ाने लगते थे। जब क्लास से जाने लगते तो फिर बैसाखी ले लेते थे, और उसके सहारे क्लास से निकल जाते थे। लड़के उनका आना-जाना रोज देखते थे, पर न तो कोई लड़का हंसता था, और न कोई कुछ बोलता था। बस, सब उनकी ओर देखते रह जाते, देखते रह जाते थे।

इसका कारण यह था कि प्रोफेसर धवन का लड़कों के ऊपर बड़ा प्रभाव था। वे अच्छा तो पढ़ाते ही थे, अपनी सहृदयता से सबके मन को अपनी मुट्ठी में लिए रहते थे। लड़के ही नहीं, कालेज के सभी अध्यापक भी उनका बड़ा आदर करते थे।

दिन के बारह बज रहे थे। प्रोफेसर धवन क्लास में पहुंचकर, बैसाखी रखकर कुर्सी पर बैठ गए। वे बड़े उदास-से लग रहे थे। उन्होंने लड़कों की ओर देखते हुए कहा – आज तुम लोग अपने आप पढ़ लो। मेरा मन पढ़ाने को नहीं कर रहा है।

लड़के आंखों में आश्चर्य भरकर प्रोफेसर धवन की ओर देखने लगे। एक लड़के से रहा नहीं गया। वह उठकर बोला—महोदय, आप आज क्यों नहीं

पढ़ाएंगे ? आप आज अधिक उदास लग रहे हैं !

प्रोफेसर धवन ने लड़के की ओर देखते हुए जवाब दिया—हां, आज ग
सचमुच बहुत उदास हूं । पढ़ाने को जी बिल्कुल नहीं कर रहा है ।



लड़के ने फिर दूसरा सवाल किया—आज आप उदास क्यों हैं महोदय
क्या बताएंगे ? प्रोफेसर धवन ने सोचते हुए जवाब दिया –तुम सब जानते त
हो ही कि, मैं एक पैर का आदमी हूं । जब मैं किसी बालक को मोटर या ट्रक ः
नीचे आते देखता हूं, तो बड़ा दुःखी हो जाता हूं और मुझे बीते हुए दिन या

आने लगते हैं।

प्रोफेसर धवन विचारों की लहरों में डूब गए। लड़के बड़े आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगे।

एक दूसरे लड़के ने उठकर उनसे पूछा--महोदय, क्या आज आपने किसी लड़के को मोटर या ट्रक के नीचे आते देखा है ?

प्रोफ़ेसर धवन ने जवाब दिया—हां, आज मेरे घर के पास ही एक दस-बारह वर्ष का बालक ट्रक के नीचे आ गया। वह पढ़ने के लिए स्कूल जा रहा था। हम सब लोग जब उसे उठाकर अस्पताल ले गए, तो डाक्टर ने कहा—इसकी आधी टांग काटनी पड़ेगी। ओह, वह बेचारा लड़का कैसे अपना जीवन व्यतीत करेगा ? एक दिन मैं भी···!

प्रोफेसर धवन की आंखें भर आईं। वे जेब से रूमाल निकालकर अपनी गीली आंखों को पोंछने लगे। लड़के आश्चर्यचकित होकर उनकी ओर देखने लगे।

एक लड़का प्रोफेसर धवन की ओर देखता हुआ बोला—महोदय, क्या आप भी उस बालक की तरह ट्रक के नीचे आ गए थे ?

प्रोफेसर धवन ने दुःख-भरे स्वर में उत्तर दिया—हां, मैं भी बचपन में ट्रक के नीचे आ गया था। उस समय मेरी उम्र केवल पांच-छह साल की थी। मैं स्कूल में पहली कक्षा में पढ़ता था।

लड़के ने फिर पूछा—ट्रक के नीचे आने के बाद आपका पैर काट दिया गया, महोदय ?

प्रोफेसर धवन ने सोचते हुए जवाब दिया—हां, बिलकुल यही बात हुई। मैं महीनों अस्पताल में पड़ा रहा। जब अच्छा हुआ, तो मुझे बैसाखी दी गई। बस, उसी दिन से बैसाखी के सहारे चलता-फिरता हूं।

लड़के ने फिर बड़ी उत्कंठा से पूछा--महोदय, फिर आपने शिक्षा किस

तरह प्राप्त की ?

प्रोफेसर धवन ने सोचते हुए कहा—लगता है, आज तुम लोग मेरे जीवन की पूरी कहानी सुनकर ही रहोगे। अच्छा तो सुनो—

मेरे माता-पिता बड़े गरीब थे। जब मेरा पैर काट दिया गया, तो वे मुझे पढ़ाना-लिखाना नहीं चाहते थे। कहते थे, ईश्वर ने तुम्हारे भाग्य में पढ़ना-लिखना नहीं लिखा है। अगर पढ़ना-लिखा होता, तो फिर तुम्हारा पैर क्यों कटता ?

पर मेरे मन में पढ़ने की बड़ी अभिलाषा थी। मैं जब अस्पताल से निकला, तो पहले ही की तरह स्कूल जाने लगा। अन्तर था, तो केवल यह कि, पहले जहां पैरों के बल स्कूल जाता था, वहां अब बैसाखी के सहारे जाया करता था।

तीन-चार महीने तक मास्टर ने मेरी ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। लड़के मेरा मजाक उड़ाया करते थे। कहते थे, लंगड़ा पढ़ने आया है। पढ़कर कलक्टर बनेगा।

मेरे मन में दुःख जरूर होता था, पर मैं निराश नहीं होता था, बड़े परिश्रम और लगन से पढ़ा करता था।

मास्टर मेरी लगन को देखकर मेरी ओर ध्यान देने लगे। उस दिन से वे मेरा आदर भी करने लगे, जब मैं इम्तहान में अव्वल पास हुआ। अव्वल पास होने पर मुझे स्कूल से वजीफा भी दिया गया।

मेरे माता-पिता मुझे पढ़ना नहीं चाहते थे, पर जब मुझे वजीफा मिला, तो उन्होंने पढ़ने पर रोक नहीं लगाई, और मैं पढ़ने-लिखने लगा।

मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ने लगा त्यों-त्यों मेरी बुद्धि तेज होने लगी। मैं हर एक क्लास में इम्तहान में अव्वल आने लगा। सबका ध्यान मेरी ओर खिंचने लगा। मेरे वजीफे की रकम भी बढ़ने लगी। एक दिन आया, जब मुझे दो सौ

रुपये मासिक वजीफे मिलने लगे थे।

मैंने क्रम-क्रम से हाई स्कूल, इन्टर, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाएं पास कीं। फिर मैंने डी०-लिट्० किया। आज तुम देख ही रहे हो मैं तुम्हारे कालेज में अध्यापक हूं।

पैर कटने से लेकर और डी० लिट्० होने तक मुझे अनेक बार अपमान के कड़ुए घूंट पीने पड़े थे। अनेक बार मेरे दोस्तों ने मुझे लंगड़ा कहकर मेरी हंसी उड़ाई थी, पर मेरे धीरज ने और मेरे साहस ने कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा। मैं बराबर मान-अपमान को भूलकर, बड़े साहस के साथ आगे बढ़ता रहा, पढ़ता रहा।

यह बात जरूर है कि मास्टरों की ओर से मुझे सदा स्नेह और प्रोत्साहन मिला। किसी-किसी शिक्षक ने तो मुझे इतना स्नेह और प्यार दिया कि मैं उसे जीवन-भर भी भूल नहीं सकूंगा। आज मेरे मन में जो मिठास है, जो प्यार है, वह मुझे अपने शिक्षकों से ही मिला है।

मैं कह सकता हूं कि अपने शिक्षकों के स्नेह और अपने साहस से ही, आज यहां तक पहुंच सका हूं। इतनी लंबी मंजिल पार करने पर भी मुझे वह दिन याद आता रहता है जब अस्पताल में मेरा पैर काटा गया था।

प्रोफेसर धवन अपनी बात खत्म करते हुए उठे और बैसाखी के सहारे कमरे से बाहर चले गए। लड़के उनकी ओर देखने लगे, रह-रहकर देखने लगे।

उस दिन से लड़कों के मन में प्रोफेसर धवन के प्रति और भी आदर बढ़ गया। उस आदर का कारण उनका साहस था—केवल साहस।

बहरा पेन्टर

श्याम अपने माता-पिता के साथ गांव में रहता था। वह तीन-चार भाई-बहन थे। माता-पिता दूसरे बच्चों की ओर तो ध्यान देते थे, पर श्याम की ओर ध्यान नहीं देते थे। इसका कारण यह था कि श्याम दोनों कानों का बहरा था।

श्याम के भाई-बहन भी उसे बहरा कहकर चिढ़ाया करते थे। वह उनकी बात को समझ तो नहीं पाता था, पर जब वे उसकी ओर देखकर हंसते तब वह यह समझने से बाकी न रहता कि वे उसकी हंसी उड़ा रहे हैं।

गांव के दूसरे लड़के भी समय-समय पर श्याम की हंसी उड़ाया करते थे।

श्याम मन-ही-मन बड़ा दुःखी होता था। वह अकेले में बैठकर रो-रोकर भगवान से कहता—हे भगवान, तुमने मुझे कान तो दिए, पर बहरा क्यों बनाया ?

जाड़े के दिन थे। एक दिन श्याम की मां ने उसे चार आने पैसे देकर कहा—जा, बनिए की दुकान से नमक ला।

पर श्याम नमक न लाकर गुड़ लाया। श्याम की मां ने उसके मुंह पर गुड़ फेंकते हुए कहा—मैं तो इस बहिरे से परेशान हो गई। न जाने किस दुर्भाग्य से यह मेरी कोख में पैदा हुआ।

श्याम बड़ा दुःखी हुआ। वह चुपचाप घर से निकल गया।

कहां जा रहा है, किसके पास जा रहा है—श्याम को कुछ पता नहीं। वह बस सड़क पकड़कर चलता जा रहा था, चलता जा रहा था।

सवेरे का समय था, जाड़ा पड़ रहा था। श्याम एक पेड़ के नीचे घुटनों में सिर डालकर सो रहा था। सूती कपड़ा पहने हुआ था। ठंड से अकड़ा हुआ था।



अचानक किसी ने पहुंचकर आवाज दी—कौन हो? ठंड में यहां क्यों पड़े हो?

पर श्याम ने कुछ जवाब न दिया। असल में उसे कुछ सुनाई नहीं पड़ा

जिसने आवाज दी थी, वह एक धनी स्त्री थी। घूमने के लिए सवेरे-सवेरे बाहर निकली थी। लम्बा कोट पहने हुए थी।

श्याम ने जब कुछ जवाब न दिया, तो स्त्री ने उसका कंधा पकड़कर हिलाया। श्याम अचकचा कर खड़ा हो गया। उसने दोनों हाथ जोड़कर स्त्री को प्रणाम किया।

स्त्री बोली—कहां रहते हो ? ठंड में यहां क्यों पड़े हो ?

श्याम ने अपने दोनों कानों पर हाथ रखते हुए कहा—मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता।

श्याम ठंड से कांप रहा था। स्त्री के मन में दया पैदा हो उठी। उसने अपना कोट उतार कर उसे उढ़ा दिया।

स्त्री श्याम को अपने घर ले गई। वह उसे अपने घर उसी तरह प्यार से रखने लगी, जिस तरह कोई अपने सगे बेटे को रखता है।

स्त्री ने श्याम को गूंगे-बहरों के स्कूल में भरती करा दिया। वह स्त्री के घर रहने लगा और स्कूल में पढ़ने लगा।

श्याम ने बड़ी मेहनत से पढ़कर हाई स्कूल की परीक्षा पास की। उसकी पेंटिंग में बड़ी रुचि थी। स्त्री उसकी पेंटिंग को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसने उसे पेंटिंग सीखने के लिए अमेरिका भेज दिया।

श्याम लगभग दो साल तक अमेरिका में रहा। वहां से जब लौटा, तो बहुत बड़ा पेन्टर हुआ। उसका नाम शहर में ही नहीं, सारे हिन्दुस्तान में फैला।

वह स्त्री को मां कहता था। स्त्री उसकी पेंटिंग कला पर गर्व करती थी। वह यह कहती हुई फूली नहीं समाती थी कि उसका बहरा बेटा बहुत बड़ा पेन्टर है।

स्त्री और पेन्टर की कहानी जब लोगों के सामने आई, तो लोग यह कहे बिना न रहे कि, आदमी बहरा हो, या गूंगा हो, या अंधा हो। कोई भी यह जानता नहीं कि वह कहां-से-कहां पहुंच सकता है।

□□